

गवाही का क़ानून

(दूसरा अध्याय)

अपराध के सूबूत के लिए कुरआन ने किसी खास तरीके की पाबन्दी को ज़रूरी नहीं किया है, इसलिए यह बिल्कुल निश्चित बात है कि इस्लामी क़ानून में अपराध उन सब तरीकों से साबित होता है जिन्हें क़ानून की नैतिकता में अपराध के सुबूत के तरीकों के तौर पर आम तौर से स्वीकार किया जाता है और जिनके बारे में अक़ल यह कहती है कि उनसे अपराध को साबित होना चाहिए। अतः, परिस्थितियां, अक़ली अनुमान, मेडिकल जांच, पोस्ट मार्टम, उंगलियों के निशान, गवाहों की गवाही, अपराधी द्वारा अपराध स्वीकार करना, हलफ़ उठाना या शपथ लेना और इस तरह के दूसरे सभी साक्ष्यों से जिस तरह अपराध दुनिया में साबित होते हैं, इस्लामी शरीअत के अपराध भी उनसे बिल्कुल इसी तरह साबित माने जाते हैं।

यही हकीकत पैगम्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के इस फ़रमान से भी सामने आती है जिस में आपने फ़रमाया: *“अलबय्यिनह अललमुद्ई वलयमीन अलल मुद्आ अलैहि”*¹। इसमें शब्द ‘अलबय्यिनह’ (गवाही या सुबूत) से यह बात साफ़ होती है। इब्ने क़य्यिम लिखते हैं:

“अलबय्यिनह अल्लाह तआला, अल्लाह के रसूल और सहाबियों के कलाम में हर उस चीज़ का नाम है जिससे सच्चाई स्पष्ट हो जाए (सत्य खुल कर सामने आ जाए)। चुनांचि फ़कीहों (शरीअत के विधि शास्त्रियों) की शब्दावली में इसका व्यापक मतलब है, क्योंकि इन लोगों ने इसे दो गवाहों या एक गवाह और क़सम के साथ खास कर दिया है।” (एअलामुल मुवक्किर्न :1 / 131)

1. तिरमिज़ी 1341 – (दलील या सुबूत देने की जिम्मेदारी मुद्ई/वादी पर है और क़सम खाने का अधिकार प्रतिवादी को है जो वादी के दावे को नकारे)

केवल दो स्थितियां इससे अलग हैं:

एक यह कि कोई व्यक्ति किसी ऐसे शरीफ़ और सुशील मर्द या औरत पर *ज़िना* (व्यभिचार) का आरोप लगाए जिसकी छवि आम तौर से अच्छी हो। इस स्थिति में कुरआन इस बात पर ज़ोर देता है कि उसे हर हाल में चार चश्मदीद गवाह लाना होंगे, इससे कम किसी सूरत में भी उस पर मुक़दमा नहीं चल सकेगा। परिस्थितियां, अक़ली अनुमान, मेडिकल परीक्षण, ये सब इस मामले में उसके नज़दीक बेमतलब हैं। आदमी दुराचारी हो तो अपराध के सुबूत के लिए ये सब तरीके अपनाए जा सकते हैं, लेकिन उसकी छवि अगर एक शरीफ़ व सुशील व्यक्ति की है तो इस्लाम यही चाहता है कि उससे अगर कोई ग़लती हुई है तो उस पर परदा डाल दिया जाए और उसे समाज में अपमानित न किया जाए। अतः इस स्थिति में वह चार चश्मदीद गवाह तलब करता है और अगर आरोप लगाने वाला ये गवाह न ला सके तो उसे अनिवार्य रूप से *“क़ज़फ़”* (लांछन लगाने) का अपराधी मानता है। अल्लाह तआला का फ़रमान है:

“और जो लोग पाक दामन (सुशील) औरतों पर लांछन लगाएं, फिर चार गवाह न लाएं तो उनको अस्सी कोड़े मारो और उनकी गवाही फिर कभी कुबूल न करो और यही लोग फ़ासिक (पापी) हैं, लेकिन जो इस के बाद तौबा व इस्लाह (प्रायश्चित और आत्मसुधार) कर लें तो अल्लाह (उनके लिए) ग़फ़ूर (मआफ़ करने वाले) व रहीम (दया करने वाले) हैं।” (अलनूर 24:4-5)

दूसरी यह कि किसी समाज में अगर वैश्याएं हों तो उनसे निपटने के लिए कुरआन के अनुसार यही पर्याप्त है कि चार मुसलमान गवाह तलब किए जाएं जो इस बात पर गवाही दें कि उक्त महिला वास्तव में एक वैश्या है। वो अगर अदालत में पूरी ज़िम्मेदारी के साथ यह गवाही देते हैं कि हम उसे एक वैश्या के रूप में जानते हैं और अदालत जिरह के बाद उनकी गवाही पर संतुष्ट हो जाती है तो वह उस महिला को सज़ा दे सकती है। अल्लाह का फ़रमान है:

“और तुम्हारी औरतों में से जो बदकारी (दुष्कर्म) करती हैं उन पर अपने में से चार गवाह तलब करो। फिर अगर वो गवाही दे दें तो उनको घरों में बन्द कर दो, यहां तक कि मौत उन्हें ले जाए या अल्लाह उनके लिए कोई रास्ता निकाल दें”। (अलनिसा 4:15)।

2. यानि मुसलमान औरतों में से जो बदकारी करती हैं

इन दो अपवादों को छोड़ कर इस्लामी शरीअत अपराध के सुबूत के लिए अदालत को हरगिज़ किसी ख़ास तरीक़े का पाबन्द नहीं करती, इसलिए “हुदूद” के (कुरआन व सुन्नत में निर्धारित सज़ाओं वाले) अपराध हों या इनके अलावा किसी अपराध की गवाही का मामला हो, हमारे नज़दीक यह काज़ी (जज) के विवेक पर है कि वह किस की गवाही कुबूल करता है और किस की गवाही कुबूल नहीं करता।

इसमें औरत और मर्द की शर्त नहीं है। औरत अगर अपने बयान में उलझे बग़ैर साफ़ तरीक़े से गवाही देती है तो उसे केवल इस वजह से रद्द नहीं किया जाएगा कि उसके साथ कोई दूसरी औरत या मर्द मौजूद नहीं है, और मर्द की गवाही में अगर झोल या भूल या कुछ अटपटापन या भ्रम सा है तो वह इस वजह से स्वीकार न की जाएगी कि वह मर्द है। अदालत अगर गवाहों के बयानों और दूसरे अनुमानों व स्थितियों के आधार पर संतुष्ट होती है कि मुक़दमा साबित है तो वह निश्चित रूप से उसे साबित घोषित करेगी और अगर वह संतुष्ट नहीं होती है कि उसे बेशक यह अधिकार है कि दस मर्दों की गवाही को भी स्वीकार करने से इंकार कर दे।

यही मामला ग़ैर मुस्लिमों की गवाही का भी है।

यहां यह स्पष्ट रहे कि हमारे फ़कीहों (शरीअत के विधि शास्त्रियों) का मत इस मामले में अलग है। इब्ने रुश्द अपनी मशहूर किताब *बिदायतुल मुजतहिद* में लिखते हैं:

तमाम फ़कीहों की सहमति है कि वित्तीय मामलों में मुक़दमा एक आदिल मर्द और दो औरतों की गवाही से साबित होता है। इसकी दलील अल्लाह का यह फ़रमान है: “अगर दो मर्द न हों तो एक मर्द और दो औरतें सही, उन लोगों में से जिन्हें तुम पसन्द करो।” लेकिन हुदूद का मामले में अलग अलग मत हैं। इसमें अधिकतर का मानना यह है कि औरतों की गवाही किसी भी हाल में स्वीकार नहीं की जा सकती चाहे वो मर्द के साथ मिल कर गवाही दें या अकेली। ज़ाहिरया लोग यह कहते हैं कि वह अगर एक से अधिक हों और उनके साथ अगर कोई मर्द भी हो तो आयत के ज़ाहिरी मतलब के आधार पर उनकी गवाही सभी मामलों में स्वीकार की जाएगी। इमाम अबु हनीफ़ा के नज़दीक इस स्थिति में भी उनकी गवाही केवल

वित्तीय मामलों में और हुदूद के अलावा दूसरे निर्देशों ('बदनी अहकाम') जैसे तलाक़, निकाह और गुलामों की आजादी में ही स्वीकार्य होगी। इमाम मालिक इसे बदनी अहकाम में नहीं मानते। माल से सम्बंधित बदनी अधिकार जैसे वकालत और उस वसीयत के बारे में जो न केवल माल से सम्बंधित होती है, अलबत्ता मालिक और उनके साथियों में मतभेद है। अशहब और इब्ने माजशून इन मामलों में केवल दो मर्दों और मालिक इब्ने कासिम और इब्ने वहब एक मर्द और दो औरतों की गवाही कुबूल करते हैं। रहा अकेली औरत की गवाही का मामला तो यह अधिकतर के नज़दीक केवल उन बदनी अधिकारों में कबूल की जाएगी जिनकी जानकारी मर्दों को आम स्थिति में किसी भी तरह नहीं हो सकती जैसे औरतों के दोष, पैदाइश और पैदाइश के समय बच्चे का रोना।" (2:348)

फ़कीहों ने अपने इस दृष्टिकोण का आधार सूरह बकरह (2) की जिस आयत पर रखा है वह यह है:

"और तुम (क़र्ज़ की दस्तावेज़ पर) अपने मर्दों में से दो आदमियों की गवाही लो और अगर दो मर्द न हों तो एक मर्द और दो औरतें सही, तुम्हारे पसन्द के लोगों में से। दो औरतें इसलिए कि अगर एक उलझे (भूल जाए) तो दूसरी याद दिला दे।" (2:282)

इस आयत से तर्क लेना हमारे नज़दीक दो कारणों से सोचने वाली बात है:

एक यह कि किसी घटना की गवाही के साथ इस आयत का सिरे से कोई सम्बंध नहीं है। यह दस्तावेज़ी गवाही से सम्बंधित है। हर अकल वाला जानता है कि दस्तावेज़ी गवाही के लिए गवाह का चयन हम करते हैं और घटना की गवाही में गवाह का घटना स्थल पर मौजूद होना एक संयोग की बात होती है। हमने अगर कोई दस्तावेज़ लिखी है या किसी मामले में कोई वचन दिया है तो हमें अधिकार है कि उस पर जिसे चाहें गवाह बनाएं, लेकिन जिना, चोरी, क़त्ल, डाका और इस तरह के दूसरे अपराधों में जो व्यक्ति भी घटना स्थल पर मौजूद होगा वही गवाह बन जाएगा। इस तरह गवाही की इन दोनों स्थितियों का फ़र्क़ इतना स्पष्ट है कि उनमें से किसी एक को दूसरी के लिए क़ियास (अनुमान या मिसाल) का आधार नहीं बनाया जा सकता।

दूसरी यह कि आयत के परिप्रेक्ष्य और वर्णन शैली में इस बात की गुंजाइश नहीं है कि इसे क़ानून व अदालत से सम्बंधित ठहराया जाए। इसमें अदालत के सम्बंधित करके यह बात नहीं कही गयी है कि इस तरह का कोई मुक़दमा अगर आए तो वादी से इस सिद्धांत के मुताबिक़ गवाह तलब करो। यह आयत उन लोगों को सम्बंधित करती है जो उधार का लेनदेन करने वाले हैं और इसमें उन्हें यह निर्देश दिया गया है कि वह अगर एक निश्चित अवधि के लिए इस तरह का कोई मामला करें तो इसकी दस्तावेज़ लिख लें और झगड़े व नुक़सान से बचने के लिए उन गवाहों का चयन करें जो अच्छे चरित्र वाले, विश्वसनीय और ईमानदार हों और अपनी परिस्थितियों व कामों के लिहाज़ से इस ज़िम्मेदारी को बहतर तरीक़े पर पूरा भी कर सकते हों। यही वजह है कि इसमें मूल रूप से मर्दों को ही गवाह बनाने और दो मर्द न हों तो एक मर्द के साथ दो औरतों को गवाह बनाने का निर्देश दिया गया है ताकि घर में रहने वाली ये महिलाएं अगर अदालत के माहोल में किसी घबराहट में मुब्तिला हों तो गवाही को शक व संकोच से बचाने के लिए एक दूसरी औरत भी उसके लिए सहारा बन जाए। इसका यह अर्थ नहीं है और न हो सकता है कि अदालत में मुक़दमा तभी साबित होगा जब कम से कम दो मर्द या एक मर्द और दो औरतें उसके बारे में गवाही देने के लिए आएँ। यह एक सामाजिक निर्देश³ है जिसकी पाबन्दी अगर लोग करेंगे तो उनके लिए यह विवाद

3. देख लीजिए, कुरआन के दूसरे सभी निर्देशों की तरह यह निर्देश भी इतना स्वभाविक है कि दुनिया में रोजाना लाखों दस्तावेज़ लिखी जाती हैं, लेकिन उनमें महिलाएं शायद हजार में एक के अनुपात में भी गवाह नहीं बनतीं।

से बचने का साधन बनेगी। लोगों को अपनी भलाई के लिए इसकी पाबन्दी करना चाहिए लेकिन मुकदमों का फैसला करने के लिए यह गवाही का निसाब नहीं है जिसकी पाबन्दी अदालत के लिए ज़रूरी हो। इस सिलसिले की सभी हिदायतों के संबन्ध में खुद कुरआन में है कि:

“यह निर्देश अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा इंसानों के लिए मज़बूत और शंकाओं की सम्भावना को कम करने वाले हैं।” (2:282)

इन्ने क़य्यिम इसके बारे में अपनी किताब *ऐअलामुल मुवक्किर्न* में लिखते हैं:

“यह गवाही का भार उठाने और उसमें मज़बूती से सम्बंधित है जिसके द्वारा कोई मालदार अपने हक़ की हिफ़ाज़त करता है, अदालत के फैसले से इसका कोई सम्बंध नहीं है। यह और चीज़ है और वह और चीज़। (1/132)।

इस ज़माने में कुछ लोगों ने फ़कीहों के इसी दृष्टिकोण के समर्थन में सूरह नूर की आयत 4 और सूरह निसा की आयत 14 में क्रमशः “*अरबअति शुहदाअ*” (चार गवाह) और “*अरबअतम मिनकुम*” (अपने में से चार) से भी तर्क दिया है, और इसको इस तरह बयान किया है कि ‘अरबअति’ (चार) स्त्रीलिंग है और अरबी व्याकरण के अनुसार इसका ‘मअदूद’ (यानि जिस शब्द के लिए यह गिनती बोली जा रही है) पुलिग होना चाहिए। इस वजह से ‘अरबअति शुहदाअ’ (चार गवाह) से अभिप्राय अनिवार्य रूप से चार पुरुष हैं, इनमें औरतें शामिल नहीं हो सकतीं।

यह तर्क हालांकि अरबी व्याकरण के नियम पर आधारित है लेकिन सच्चाई यह है कि ज्ञान और तर्क की दुनिया में अरब रीति से इतनी अजनबी कोई चीज़ शायद ही किसी ने देखी हो। इस भाषा को जानने वाला हर व्यक्ति जानता है कि इसका नियम केवल यही नहीं है कि तीन से दस तक अगर ‘मअदूद’ पुलिग हो तो उसका ‘अदद’ (गिनती) स्त्रीलिंग होगा, बल्कि यह भी है कि ‘मअदूद’ अगर कोई ऐसी संज्ञा हो जो पुलिग और स्त्रीलिंग दोनों के लिए बोली जाती हो तो उसका ‘अदद’ भी अनिवार्य रूप से स्त्रीलिंग होगा। चुनावि देखें सूरह अल-अनआम में “*अज़वाज*” का अदद इसी सिद्धांत पर “*समानियतः*” (आठ) आया है:

“तुम आठ जोड़े लो, भेड़ों में से दो, नर और मादा और बकरियों में दो, नर और मादा फिर इन से पूछो कि अल्लाह ने इनके नर हराम किए हैं या मादा?” (6:143)

इसी तरह सूरह मुजादिला में है:

“कभी ऐसा नहीं होता कि तीन कानाफूसी करने वाले हों और उनमें चौथा वह न हो। पांच काना फूसी करें और उनमें छटा वह न हो” (58:7)

“अरबअतम मिनकुम” (तुम में से चार) की तरह यहां सलासतिन और ख़मसतिन का मअदूद इसी लिहाज़ से विलुप्त (omitted) है, यानि तीन और पांच की गिनती जिनके लिए बोली गयी है उनका ज़िक्र नहीं किया गया है जबकि मतलब साफ़ है कि तीन नफ़र (व्यक्ति)। लेकिन यह ‘नफ़र’ भी चूँकि ऐसी संज्ञा है जो

पुर्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों के लिए समान है, इसलिए अदद (गिनती) इस आयत में भी स्त्रीलिंग स्तेमाल हुआ है।

इस शैली के उदाहरण निम्नलिखित हदीसों में भी मिलते हैं:

व तआमुल उसनयेय्न यकफ़ी अल अरबअत⁴

अनुवाद: दो व्यक्तियों का खाना चार लोगों के लिए पर्याप्त होता है।

इज़ा कान सलासति फ़ला यतनाजिसनार्न

अनुवाद: तीन लोग हों उनमें से दो को आपस में कानाफूसी नहीं करना चाहिए।

मा मिन मुस्लिम यशहदु लहु सलासतुन इल्ला वजबत लहुल जन्नर्त अनुवाद: जिस मुसलमान की तीन लोग गवाही दें उसके लिए जन्नत लाज़िम हो जाती है।

रफ़अल क़लम अन सलासतु: अनिन्नाइम हत्ता यसतेयक़र्जु

अनुवाद: तीन आदमियों पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं: सोए हुए पर जब तक वह जाग न जाए,

(4. दारमी, रकम 2050); (5. मुस्लिम, रकम 5649); (6. तिरमिज़ी, रकम 1059); (7. अबुदाऊद, रकम 4398)

इन हदीसों में भी देख लीजिए 'अरबअतिन', 'सलासतिन' ये दोनों स्त्रीलिंग हैं, लेकिन भाषा शैलियों की जानकारी रखने वाला कोई आदमी क्या यह कह सकता है कि इनसे अभिप्राय केवल मर्द हैं, या यह कि औरतें इनमें किसी तरह शामिल नहीं मानी जा सकतीं?

इसी तरह एक दूसरा तर्क उन लोगों ने यह दिया है कि सूरह बकरह की आयत 282⁸ में गवाही के समय चूंकि औरतों के घबरा जाने का ज़िक्र हुआ है और इससे उनकी गवाही में शक की आशंका पैदा होती है इसलिए रसूल सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के इस फ़रमान के हिसाब से कि "शक हो तो हद जारी न करो"⁹, उनकी गवाही पर ताज़ीर (बनाए जाने वाले क़ानून) के रूप में कोई सज़ा दी जा सकती है लेकिन 'हद' (कुर्आन व सुन्नत में निर्धारित क़ानून) की सज़ा किसी हाल में भी नहीं दी जा सकती।

(8. यह आयत इसी विवेचना में उपर नकल हो चुकी है)

(9. तलख़ीस अलहबीर, इब्ने हजर 4/56, यही विषय तिरमिज़ी रकम 1424 और इब्ने माजा रकम 2545 में भी बयान हुआ है),

यह तर्क भी गौर करने पर बेमतलब लगता है:

पहली बात तो यह कि, इस आधार पर कि औरत अगर गवाही के समय घबरा जाएगी और अदालत महसूस करेगी कि उसकी गवाही इस घबराहट से प्रभावित हुई है तो वह किसी ख़ास मुक़दमे में, जहां यह मामला हो इस गवाही को रद कर सकती है, लेकिन इससे यह नतीजा आख़िर कैसे निकाला जा सकता है कि क़ानून की किताब में हमेशा के लिए यह धारा लिख दी जाए कि अब औरतों की गवाही मानी ही नहीं जा

सकती। हम इस सम्भावना को मानते हैं कि औरत घबरा सकती है लेकिन इसी के साथ क्या यह सम्भावना भी नहीं है कि वह बगैर किसी घबराहट के पूरे आत्मविश्वास के साथ अपनी गवाही अदालत में दे दे। कुरआ ने अगर कहा है तो यह कहा है कि हो सकता है (या अगर) वह घबरा जाए। यह तो नहीं कहा कि कि वह हर हाल में घबराती ही है या निश्चित रूप से घबराएगी। आशंका या सम्भावना हर हाल में आशंका या सम्भावना ही है इसे निश्चित रूप देकर एक नियम आखिर कैसे बनाया जा सकता है?

दूसरे यह कि “*इदर वलहुदूद बिश्शुबहात*” का अर्थ यह नहीं है कि और न हो सकता है कि शक हो तो केवल हद रोक दी जाए, बल्कि यही हैं और यही हो सकते हैं कि शक हो तो सज़ा रोक दी जाए। रसूल सल्ल. का यह फ़रमान क़ानून की नैतिकता के इस सार्वभौमिक सिद्धांत पर आधारित है कि शक हो तो अपराध चूंकि साबित नहीं होता इसलिए अपराधी को कोई सज़ा भी नहीं दी जा सकती। इसलिए अगर यह कहा जाए कि औरत की गवाही से ‘ताज़ीर’ के अपराध में सज़ा दी जा सकती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि इससे अपराध साबित होता है। लेकिन सवाल यह है कि अगर अपराध साबित हो जाता है तो फिर ‘हद’ क़ानून लागू क्यों नहीं होगा? और अगर यह कहा जाए कि औरत की गवाही में शक निश्चित रूप से रहता ही है तो अपराध साबित ही नहीं हुआ। तो जब अपराध साबित नहीं होगा तो फिर ‘ताज़ीर’ के अपराध में भी सज़ा क्यों दी जाएगी? अपराध के मामले में यह बिल्कुल तय है कि वह कभी दस या बीस या नव्वे या निनयानवे प्रतिशत साबित नहीं होता, वह हमेशा शत प्रतिशत साबित होता है या बिल्कुल साबित नहीं माना जाता। इसलिए यह बात अनर्थ है कि अपराध के साबित होने और साबित न होने के बीच किसी स्थिति को माना जाए और फिर यह कहा जाए कि अपराध अगर इतना साबित होता है तो ‘हद’ की सज़ा के लिए काफ़ी है और इतना साबित होता है तो ‘ताज़ीर’ की सज़ा के लिए काफ़ी है। अपराध के स्वरूप और अपराधी की परिस्थितियों को सामने रख कर सज़ा में फ़र्क तो बेशक किया जा सकता है लेकिन सुबूत की स्थिति भी क्या इस फ़र्क का आधार बन सकती है? अक़ल इस बात को नहीं मानती है और इंसानी स्वभाव इसे मानने से इंकार करता है।